सन्मार्ग से जीवन सुखी

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

सन्मार्ग का अर्थ है जीवन जीने के लिए अच्छे मार्ग का चयन करना। अच्छाई और बुराई दोनों समाज में रहती हैं। जब बुराई पर अच्छाई की विजय होती हैं तो समाज और राष्ट्र का निर्माण होता है। महाभारत के युद्ध में कौरव और पाण्डव दो विचारधारा वाले थे। पाण्डव धर्म के द्वारा विजय प्राप्त करना चाहते थे और कौरव येनकेन प्रकारेण युद्ध जीतना चाहते थे। कौरव बुराई के मार्ग पर चल रहे थे। इसीका परिणाम था कि वे युद्ध में पराजित हुए। जो बुरे मार्ग पर चलता है उसक जीवन दुःखी होता है और जो अच्छे मार्ग पर चलता है उसका जीवन सुखी होता है। इस संसार में सभी मानव सुख चाहते हैं दुःख कोई नहीं चाहता। सुख और दुःख मानव को प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त होते हैं। मनुष्य जैसा कर्म करता है उसे वैसा फल प्राप्त होता है। यदि वह अच्छा कर्म करता है तो उसे सुख की प्राप्ति होती है और यदि बुरा कर्म करता है तो उसे दुःख की प्राप्ति होती है। कर्म अपना फल अवश्य देते हैं। बिना भोगे कर्म का फल नष्ट नहीं होता। अतः मनुष्य को सदैव अच्छा कर्म ही करना चाहिए। जिससे उसका लोक और परलोक सुधरे और सुख की प्राप्ति हो। धर्म क्रिया जैसे सामायिक, संवर, दया व्रत, उपवास, पौषध, त्याग–प्रत्याख्यान आदि का जैन धर्म आराधना में प्रमुख साधना मार्ग हैं। भगवान वीतराग देव ने इन क्रियाओं की प्ररूपणा आत्म कल्याण के हेतु प्ररूपित की। जीवन को निर्विकार दशा में लाने को तथा अनन्त कालिक कुकर्मो का निवारण करने में ये क्रियायें जीवन पुरुषार्थ को सार्थक बना देती हैं। मैले कपड़े को साफ करने के लिए कुछ तो करना ही होगा। केवल यह विचार लेकर बैठ जाएं कि कपड़ा साफ हो जाए तो इतने मात्र से कपड़ा साफ नहीं होगा। तप मानव के आन्तरिक और बाहरी शुद्धता का साधन है। इसलिए तप का मानव जीवन में बहुत महत्व है। तप से सुख और शांति मिलती है।

जिस वस्तु से हम परिचित नहीं होते उसके प्रति हमारा अनुराग नहीं होता है। अनुराग परिचित होने के बाद होता है। तप के प्रति हमारा अनुराग तभी बढेगा जब हम उससे परिचित होंगे। तप एक छोटासा शब्द है। दो अक्षरों का, वह भी लघु अक्षरों का। इसकी शब्द रचना जितनी लघु है इसका कार्य उतना ही महान् है। अणु से कई गुना शक्ति इसमें है। इससे स्पष्ट है कि तप में अणु से भी कई गुना शक्ति है। तप अपने आप में शक्ति है। उसका दुरुपयोग करना शक्ति का दोष नहीं, व्यक्ति की उच्छृंखलता है। योगदर्शन में भी कर्म को क्रियारूप ही माना गया है। महर्षि पतंजलि ने प्राणियों द्वारा किये जाने वाले कर्मों की तीन श्रेणियां बतायी हैं– शुक्ल कर्म अर्थात् पुण्य कर्म, कृष्ण कर्म अर्थात् पाप कर्म, शुक्ल कृष्ण कर्म अर्थात् पाप पुण्य कर्म का मिश्रित रूप। शुक्लकर्म उसको कहते हैं जिनका फल सुख भोग होता है। कृष्णकर्म उसको कहते हैं जो नरक आदि दुःखों के कारण हैं। सिद्ध योगी के कर्म किसी भी प्रकार का भोग देने वाले नहीं होते क्योंकि उनका चित्त कर्म संस्कारों से शून्य होता है। इसलिए उनके कर्मों को अशुक्ल और अकृष्ण कहा जाता है। उपनिषदों के अनुसार जन्म का साक्षात् सम्बन्ध कर्म से है। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं बल्कि जन्म और कर्म का अविनाभावी सम्बन्ध है। प्राणियों में विद्यमान सुख–दुःख का सम्बन्ध उनके द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्म हैं। छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि जो व्यक्ति शुभ कर्म करता है वह अच्छी योनि में जन्म पाता है और जो व्यक्ति कुत्सित कर्म करता है वह खराब योनि में जन्म लेता है। जो साधु कार्म करता है, वह साधु होता है और जो पापकर्म करता है वह पापी होता है। पुण्य कर्म से पुण्य तथा पापकर्म से पाप होता है। इस प्रकार मनुष्य के उत्थान– पतन, सुख–दुःख तथा ऐश्वर्य अनैश्वर्य का हेतु कर्म को बताया गया है।

जो कर्मयोगी सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों से व्याप्त अपने वर्णाश्रम और परिस्थिति के अनुकूल कर्त्तव्य कर्म का आरम्भ करके उनको और अपने अहंता, ममता और आसक्ति, आदि भावों को उन परब्रह्म परमात्मा में लगा देता है तो उन कर्मों से उसके कर्त्तापन का सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है और ऐसे कर्म फलदायक नहीं होते। फलदायक क्रियमाण कर्मों के अभाव में उस व्यक्ति के संचित कर्म भी सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। इस तहर कर्मों का नाश हो जाने पर वह पुरुष परमात्मतत्त्व को प्राप्त कर लेता है। कर्म बन्धन और मुक्ति दोनों का कारण है।

जो जैसा कर्म करता है उसे वैसा फल प्राप्त होता है। कर्म करने के सम्बन्ध में शास्त्र ही प्रमाण हैं। इस प्रकार प्राणियों के उत्थान और पतन में कर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। बन्ध और मोक्ष प्राणियों के अपने अधीन है, सत्य प्रतीत होता है। जो व्यक्ति दूसरों के लिए जीता है वह त्यागी कहलाता है। मैत्री, सद्भावना, सहयोग से समाज में एकता बढ़ती है और भाईचारे का संदेश सभी प्राणियों को प्राप्त होता है। समाज की जो व्यवस्था बनी हुयी है उस व्यवस्था को तोड़ना नहीं चाहिए इससे अशांति बढ़ने का खतरा रहता है और जब समाज में अशांति बढ़ती है तो लोगों में असुरक्षा की भावना प्रबल हो जाती है। भय से आदमी हिंसात्मक हो जाता है जिससे समाज और राष्ट्र के सामने असुरक्षा की भावना खड़ी हो जाती है। समाज में सभी प्राणी एक दूसरे के साथ प्रेम से रह सके, एक दूसरे के सुख–दुःख में हाथ बटा सके, जिससे समाज व्यवस्था सुचारु रूप से गतिशील रहे। इन सब कारणों से मानव सुखी रह सकता है और दूसरों को भी सुख दे सकता है।